4

गिजुभाई बधेका की शिक्षण पद्धतियाँ प्राथमिक शिक्षा के विशेष संदर्भ में

त्रिभुवन मिश्रा*
सीमा सिंह**

गिजुभाई के शिक्षण चिंतन का मेरूदंड उनके द्वारा स्वीकृत शिक्षण पद्धतियाँ हैं। गिजुभाई ने शिक्षण पद्धतियों के संदर्भ में अपने विचारों और प्रयोगों को *प्राथमिक विद्यालय शिक्षक और शिक्षण पद्धतियाँ* नामक पुस्तक में क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया है। शिक्षा के किसी भी स्तर पर शिक्षण पद्धतियों का विशेष महत्त्व होता है। उपयोगी शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग करके कम क्षमतावान शिक्षक भी विद्यार्थियों के सफलतापूर्वक शिक्षित एवं उनकी पढ़ने में रुचि जागृत कर सकते हैं। गिजुभाई ने शिक्षण द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली पारस्परिक व्यवस्था (पठन-पाठन) को छोटे बच्चों के लिए अनुपयुक्त पाया था। उनका मानना था कि हम एक ही पद्धति द्वारा विविध विषयों की जानकारी बच्चों को नहीं दे सकेंगे। हमें विषय की प्रकृति व बच्चों की रुचि के अनुरूप शिक्षण पद्धतियाँ प्रयुक्त करनी होंगी।

बच्चों को बगैर कोई यातना-प्रताड़ना दिए प्यार-दुलार के साथ पढ़ने-लिखने के लिए उन्होंने बाल-शिक्षण के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए। अपनी मेहनत, लगन, निष्ठा, निरंतर जागरूकता तथा एकाग्रता के फलस्वरूप वे बच्चों के लिए शिक्षण का एक ऐसा संसार रचने में सफल हो सके जिसे सच्चे अर्थों में खुशियों का संसार कह सकते हैं, एक ऐसा संसार जहाँ दुख, कष्ट, यातना, गाली-गलौच, अपमान, डाँट-फ़टकार, कोसना, पिटाई और प्रताड़ना जैसी चीज़ों के लिए कोई जगह न थी।

गिजुभाई का मानना था कि बालक तो स्वयं सीखते हैं, इनके लिए शिक्षक को ऐसे उपकरणों एवं सामग्रियों का प्रयोग कर ऐसा वातावरण उपस्थित करना चाहिए जिससे विद्यार्थी सीखने में आनंद एवं उल्लास का अनुभव करें। इस प्रकार विद्यार्थी अधिक से अधिक सीख सकेंगे तथा उनकी कल्पना एवं सृजनात्मक शक्तियों का भी विकास हो सकेगा।

प्राथमिक शिक्षा किसी भी व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण होती है। प्राथमिक शिक्षा के ठीक प्रकार से पूर्ण होने पर ही बालक का भविष्य निर्भर करता है।

---

* *शोधार्थी,* शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** *प्रोफ़ेसर,* शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गिजुभाई का मानना था कि बेहतर प्राथमिक शिक्षा के लिए अध्यापक को रुचिकर एवं मनोरंजक शिक्षण विधियों का ज्ञान नितांत आवश्यक है।

विद्यार्थियों को शिक्षा देने हेतु आवश्यक है कि शिक्षक अपनी आँखें और कान खुले रखकर और इससे भी अधिक अपना मस्तिष्क खुला रखकर अपने शिक्षण के लिए कोई पहल निश्चित करे। गिजुभाई ने उस समय आज से लगभग 80 वर्ष पूर्व जबकि शिक्षण पद्धतियों पर कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी, उन्होंने अपने शैक्षिक चिंतन और प्रयोगों द्वारा लिखी गई पुस्तक में विभिन्न शिक्षण पद्धतियों की चर्चा की जिनका वर्णन इस प्रकार है –

1. व्याख्यान पद्धति

गिजुभाई व्याख्यान पद्धति को उपदेशात्मक पद्धति मानते थे और बाल शिक्षण के लिए इसे अनुपयुक्त मानते थे। उनके मतानुसार इस पद्धति में बालक को सोचने के लिए, करने के लिए कुछ भी नहीं होता। इस पद्धति में केवल एक ही इंद्रिय–श्रवणेंद्रिय का ही प्रयोग होता है जिससे दूसरी इंद्रियों का विकास रुक जाता है और बालकों की स्मरण शक्ति पर अत्यधिक बोझ आ जाता है। उनके मतानुसार इस पद्धति में "विद्यार्थी को अनुभव और प्रयोग द्वारा सीखने का कोई अवसर नहीं मिलता, अत: उसका ज्ञान तोते जैसा ऊपरी ज्ञान होता है" (बधेका, 2012, पृ. 21)।

गिजुभाई का तर्क था कि "ज्ञान प्राप्ति की जिस पद्धति से बुद्धि का विकास रुकता हो, वह पद्धति थोड़े ही समय में ज्ञान की सारी विरासत सौंप देने की शक्ति रखती भी हो तो उससे लाभ क्या?" (बधेका, 2012, पृ. 22)। उन्होंने व्याख्यान पद्धति के मुख्य रूप से दो दोष बताए हैं – (1) इससे खुद काम करने की और अनुभव प्राप्त करने की विद्यार्थी की रुचि नहीं बन पाती है। (2) विद्यार्थी को सभी मामलों में दूसरों के निर्णय स्वीकार करने पड़ते हैं, इसलिए इसमें बुद्धि के विकास के लिए कम अवसर मिलते हैं।

व्याख्यान पद्धति का गिजुभाई विरोध तो करते थे लेकिन उसे पूर्णत: अस्वीकार नहीं करते। वे मानते थे कि कुछ विद्यार्थियों के लिए और कुछ परिस्थितियों में यह पद्धति कुछ हद तक उपकारक भी है। महाविद्यालयों के लिए इस पद्धति को वे हानिकारक नहीं मानते। वह मानते थे कि विवेकशील अध्यापक विवेकपूर्ण ढंग से और थोड़ी मर्यादापूर्वक दूसरी पद्धति के साथ इसका उपयोग कर सकता है।

2. प्रश्नोत्तर पद्धति

गिजुभाई के मतानुसार प्रश्नोत्तर पद्धति व्याख्यान की तुलना में ऊँचे दर्जे की पद्धति है। जो दोष व्याख्या पद्धति में हैं वे दोष इस पद्धति में नही हैं। प्रश्न का उत्तर देते समय छात्र को स्वयं सक्रिय बनना पड़ता है, फलस्वरूप उसमें क्रिया करने की शक्ति प्रकट होती है। यह विधि अध्यापकों के लिए थोड़ी कठिन अवश्य है क्योंकि इसके लिए उन्हें ज्ञानी होना आवश्यक है। क्योंकि इसमें बालकों से प्रश्न पूछ-पूछकर उन्हें ज्ञान के रास्ते में चढ़ाना होता है और बालकों के प्रश्नों के ऐसे उत्तर देने होते हैं जो बालक के विकास का पोषण करने वाले हों। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षक को प्रश्न पूछने और प्रश्नों का उत्तर देने की कला का सुंदर ज्ञान हो। इसमें बच्चा ज्ञात से अज्ञात की ओर

जाता है। प्रश्न कैसे हों इस पर भी निम्नलिखित चर्चा करते हैं और कहते हैं कि प्रश्न का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि उसके उत्तर में से दूसरा प्रश्न सहज ही प्रकट हो। विद्यार्थी की स्मरण शक्ति को सहायता पहुँचाने अथवा उत्तेजित करने वाली सामग्री विद्यार्थी को सुलभ हो तो अच्छा प्रश्न का उत्तर गलत आये तो उसको गलत कहने के बदले कुछ दूसरे प्रश्न पूछकर प्रश्नों के उत्तर अथवा किसी दूसरे व्यक्ति से पूछकर उत्तर की गलती समझा देनी चाहिए। प्रश्न ऐसा होना चाहिए कि उसका एक ही उत्तर निकले। संदिग्ध एवं दो उत्तरों वाले प्रश्न पूछने योग्य नहीं होते। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यदि प्रश्न भाषायी त्रुटि के कारण बालक न समझ सका हो तो प्रश्न को दोहरा देना चाहिए।

गिजुभाई इस बात में एकदम स्पष्ट थे कि प्रश्नोत्तर पद्धति के बहुत अच्छा होते हुए भी इस पद्धति के द्वारा सभी चीज़ों का शिक्षण संभव नहीं है। "यह मानना कि प्रश्नोत्तर पद्धति में हर छोटी-बड़ी बात को प्रश्न द्वारा निकलवाकर ही आगे बढ़ा जा सकता है, एक भ्रम है और मूर्खता भी है" (बधेका, 2012,पृ. 26)।

3. जोड़ीदार पद्धति

गिजुभाई के समय में बड़ी उम्र के बालकों में व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने को प्रधानता दी जाने लगी और उसका प्रयोग बेल्जियम व इंग्लैंड में सफलतापूर्वक चल रहा था। इस पद्धति का एक महत्वपूर्ण हेतु यह है कि इसमें विद्यार्थी न केवल स्वयं अपना गुरु बन सकता है बल्कि वह दूसरों का भी गुरु बन सकता है। इसमें सामूहिक शिक्षा से कम समय लगता है। गिजुभाई के मतानुसार यह पद्धति उत्तम से उत्तम विद्यार्थी से लेकर ठेठ से ठेठ विद्यार्थी तक सबको अपने-अपने सामर्थ्यानुसार सीखने का उत्साह और शक्ति देती थी।

जोड़ीदार पद्धति में विद्यार्थियों की दो-दो की जोड़ी बनाते हैं। जोड़ियों में बटे ये विद्यार्थी आपस में एक-दूसरे को सिखाते-पढ़ाते हैं। इन जोड़ीदारों में एक-दूसरे से कुछ बढ़कर होता है। विद्यार्थियों के निकट पाठ्यपुस्तकें व अन्य साधन, जिनसे वह सीख सकता है, उपलब्ध रहते हैं। एक जोड़ीदार अपनी पसंद का विषय या पुस्तक पढ़कर समझता है और अपनी कठिनाइयों की दूसरे जोड़ीदार से चर्चा करता है। यदि वह न समझा सके तो अन्य विद्यार्थी और अंत में शिक्षक से अपनी समस्या का समाधान करा लेता है किंतु जब विद्यार्थी आपस में सोचते हैं तो उनसे कुछ भूलें होना स्वाभाविक है। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक खास तौर पर गतिशील रहे और सारी कक्षा में घूमता रहे और जो भूलें हो रही हैं उनको सुधारता रहे।

इस पद्धति में "शिक्षक को बहुत सावधान रहना होता है। जब इस पद्धति के अनुसार काम शुरू होता है तो अकसर शिक्षक के सामने पूरी कक्षा के विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर करने का काम एक साथ आ खड़ा होता है" (बधेका, 2012, पृ. 26)।

4. नाट्यप्रयोग पद्धति

मनुष्य की अनुकरण की सहजवृत्ति होती है जो बचपन में सर्वाधिक होती है। बालक अपने आस-पास दिन-रात जो घटनाएँ घटती रहती हैं, उनका अभिनय अपने छोटे-छोटे खेलों के रूप में करते रहते हैं। बालकों के अनुकरणशील स्वभाव से उत्पन्न होने वाले ये

सब खेल अनेक छोटे-छोटे नाट्यप्रयोग ही होते हैं। गिजुभाई की पैनी दृष्टि ने इसे देखा और इसका प्रयोग बाल शिक्षण के लिए कर लिया। बालक घटित घटनाओं का अथवा दूर के दृश्यों का अभिनय करते हुए अपनी कल्पना शक्ति और सृजन शक्ति का पोषण कर उन्हें सुदृढ़ और तीव्र बनाते हैं। अपने इस अभिनय द्वारा वे काल्पनिक ज्ञान के सहारे वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और विद्यालय में पढ़े बिना भी अपने आपको शिक्षित कर लेते हैं।

5. संयोगीकरण और पृथक्करण पद्धतियाँ

"संयोगीकरण पद्धति का मतलब यह है कि वस्तु अथवा विषय को पहले उसकी इकाई से अलग करके सिखाने के बाद समूची वस्तु का अथवा विषय का पूरा ज्ञान करा देना। पृथक्करण पद्धति इससे बिल्कुल उल्टी है। पृथक्करण पद्धति का अर्थ यह है कि पहले वस्तु अथवा विषय का पूरा ज्ञान कराने अथवा उसको पूरी तरह सिखा देने के बाद पृथक्करण के द्वारा उसके अंगों-उपांगों को अलग-अलग दिखाकर उस विषय का ज्ञान करा देना" (बधेका, 2012, पृ. 27)।

भाषा सिखाने के संदर्भ में गिजुभाई ने इस विधि के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात लिखी है –

"अंग्रेज़ी भाषा में भाषा सिखाने का काम संयोगीकरण की अपेक्षा पृथक्करण पद्धति से शुरू करने की हिमायत बढ़ रही है। कारण यह है कि संयोगीकरण पद्धति से शब्द सिखाने पर अंग्रेज़ी भाषा के उच्चारणों की विचित्रता कठिनाई खड़ी कर देती है। चूँकि अंग्रेज़ी भाषा के उच्चारण का अनुसरण नहीं करती, इस कारण उसके शब्दों के हिज्जों में और उच्चारण में अंतर उत्पन्न हो जाता है। इसलिए उनको पृथक्करण पद्धति सुलभ मालूम हुई किंतु भारत में अक्षर सिखाने के लिए पृथक्करण पद्धति को अपनाना अंधानुकरण करने के समान है। हमारी भाषा उच्चारण का अनुसरण करती है इसलिए हमें तो मूलाक्षर संयोगीकरण पद्धति से ही सिखाने चाहिए। इसके समर्थन में डॉ० मांटेसरी की अक्षर सिखाने की पद्धति हमारे सामने है। इटालियन भाषा उच्चारणानुसारी है, वह ध्वनि का अनुसरण करती है इसलिए इटली में भी भाषा संयोगीकरण पद्धति से सिखाई जाती है" (बधेका, 2012, पृ. 29)।

6. त्रिपद पद्धति

सेगुइन पद्धति का ही यह हिंदी नामकरण है। सेगुइन ने बालक के व्यवहार को गंभीरतापूर्वक अवलोकन करने के बाद समझा कि बालक अपनी इंद्रियों और मन द्वारा वस्तु को देखते हैं और फिर बड़ों से नाम पूछकर अपनी बुद्धि में धारण करते हैं। इस प्रकार वे इंद्रियगम्य अनुभवों को संज्ञा के साथ जोड़कर बुद्धि के पटल पर अंकित करते हैं। संज्ञा सही है या नहीं इसको पूछकर वे अपना ज्ञान दृढ़ करते हैं। बालकों की स्वयं शिक्षा की रीति को सेगुइन ने तीन पदों में बाँटकर शिक्षा के क्षेत्र में लागू किया था। अतः इसे त्रिपद विधि कहते हैं।

जैसे बालक को नीले व लाल रंग का ज्ञान कराने के लिए तीन पद होंगे—

(क) यह रंग लाल है, यह रंग नीला है।

(ख) लाल रंग दिखाओ, नीला रंग दिखाओ।

(ग) यह रंग कौन सा है?

गिजुभाई ने इस पद्धति के विषय में लिखा है—"सेगुइन ने बड़ी चतुराई के साथ बालक की स्वयं सीखने की रीति से त्रिपद पद्धति के रूप में शिक्षा की एक सुंदर पद्धति खड़ी कर ली है" (बधेका, 2012, पृ. 29)।

7. प्रत्यक्ष पद्धति

प्रत्यक्ष पद्धति का अर्थ है "वह पद्धति जिसमें किसी भी क्रिया को करते समय उसके साथ क्रियावाचक शब्द या वाक्य देकर अथवा पदार्थ या गुण दिखाकर या भाव व्यक्त करके उस पदार्थ या गुण या भाव के शब्द बोध के साथ उसका अर्थ बोध भी कराया जाता है" (बधेका, 2012, पृ. 33)।

आमतौर पर प्रत्यक्ष पद्धति का प्रयोग विदेशी भाषा को सरलता से सिखाने के लिए किया जाता है। इसमें विद्यार्थी के सामने विदेशी भाषा सीधे-सीधे ही बोली जाती है। उसमें क्रियाएँ, गुण, अव्यय, नाम आदि को प्रत्यक्ष करके दिखाया जाता है। पाठशाला में भर्ती होने के समय तक बालक सहज भाव से, प्रत्यक्ष विधि से ही सबकुछ सीखता रहता है। अतः विद्यालय में भी उसे प्रत्यक्ष ज्ञान से ही सच्चा अनुभव करवाना चाहिए। इसके लिए शिक्षक को पाठशाला को भवन तक ही सीमित न रखकर आस-पास की समूची सृष्टि को शाला मानकर और उसमें मनुष्य के साथ प्रकृति को भी जोड़कर विद्यार्थी को उसका प्रत्यक्ष ज्ञान करवाना चाहिए।

8. योजना पद्धति

गिजुभाई के अनुसार यह विधि किलपैट्रिक द्वारा दी गई व्यावहारिक पद्धति है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि योजना पद्धति एक प्रश्न से शुरू होती है। एक प्रश्न को हल करते समय कई प्रश्न खड़े हो जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर खोज लेने में सारी योजना अमल में आ जाती है और एक काम संपूर्ण रूप से पूरा हो जाता है। इस प्रकार विद्यार्थी सक्रिय रूप से और स्वेच्छा से ज्ञान प्राप्त करते हैं और क्योंकि यह ज्ञान अनुभव सिद्ध होता है इसलिए वह स्थायी भी होता है।

गिजुभाई के समय में ही पंजाब के मोगा नगर में इस प्रकार के शिक्षण का प्रयोग चल रहा था। गिजुभाई ने उसका विवरण दिया है –

"वर्ष के आरंभ में शिक्षक के द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में इस बात की चर्चा शुरू हुई कि गरमी की छुट्टियों में अपने-अपने गाँवों में गाँव वालों का स्वास्थ्य कैसा रहा? इस चर्चा के कारण विद्यार्थियों में इस बात को जानने की प्रबल इच्छा जागी कि बीमारियों की रोकथाम कैसे की जाए, अथवा बीमारों की सार-सँभाल किस तरह की जाए? शिक्षक ने सुझाया कि मोगा नगर के सरकारी अस्पताल में इसके बारे में पूछताछ की जाए। इस काम के लिए समितियाँ गठित की गईं। समितियों ने अस्पताल में जाकर वहाँ की परिस्थिति का अध्ययन किया और अपने-अपने प्रतिवेदन तैयार करके भेजे। उनके प्रतिवेदनों में ज़मीन के और मकानों के नक्शे थे। खर्च का अंदाज-पत्रक था। काम में आने वाली दवाइयों की सूची थी। नौकरों के कर्तव्यों की जानकारी थी और बीमारों की बीमारियों का ब्योरा था। अस्पताल किस तरह चलाना और कार्यालय की व्यवस्था कैसी रखनी चाहिए इसकी जानकारी भी थी। उन्होंने रुचिपूर्वक इस बात का पता लगाया कि सामान्य

बीमारियाँ क्या-क्या थीं, और कितने प्रतिशत रोगी उन बीमारियों से पीड़ित थे। इसके बाद उन्होंने अपनी कक्षा के अंदर एक छोटा-सा अस्पताल खोलने का निश्चय किया और वहाँ रहने वाले विद्यार्थियों को और दूसरे लोगों को सहायता पहुँचाई। कुछ फर्नीचर विद्यार्थियों ने खुद बनाया और कुछ उधार माँगा। बात का पता चलाया कि दवाइयाँ कहाँ मिलती हैं। अपने अस्पताल को चलाने के खर्च का अंदाज़-पत्रक तैयार किया। दवाइयों को तोलना सीखा। बोतलों पर लेबल लगाना, नक्शे बनाना और कार्यालय चलाना सीखा। इस प्रकार अस्पताल की एक योजना के सहारे उन्होंने इतनी सारी बातें सीख लीं। और भी बहुत-सी बातें सीखी" (बधेका, 2012, पृ. 36)।

"जब तक इस पद्धति से विद्यार्थी उत्साह के साथ काम करके सीखते हैं और काम के साथ ज्ञान को जोड़ते हैं तब तक ही यह पद्धति अच्छी है। यह पद्धति ऐसी नहीं है कि इसे हर कोई शिक्षक चला सके" (बधेका, 2012, पृ. 26)।

9. किंडरगार्टन पद्धति

इस पद्धति का प्रतिपादन फ्रोबेल ने किया था। जर्मन भाषा में इसका अर्थ है बच्चों का बाग। गिजुभाई दुख के साथ कहते हैं कि आज भारत में चल रही किंडरगार्टन पद्धति फ्रोबेल की मूल कल्पना और सिद्धांत पर आधारित न होकर तात्विक और धार्मिक समझदारी पर अथवा यूँ कहें कि दर्शन पर आधारित है। फ्रोबेल की पद्धति मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित है। किंडरगार्टन पद्धति के केंद्र में शिक्षक रहता है।

"गिजुभाई किंडरगार्टन पद्धति का आदर करते हैं किंतु उस पद्धति की सीमाओं के विषय में भी वे चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि किंडरगार्टन पद्धति में समय-चक्र की कुछ अंशों में पाठ्यक्रम की ओर रुचि जगाकर सिखाने की व्यवस्था है परंतु उत्तेजित रस के कारण किंडरगार्टन में बालक आकुल-व्याकुल बनता है और स्थिरता के बदले उसमें चंचलता और शक्ति के बदले उत्तेजना बढ़ती है। इसमें बालक की विशिष्ट शक्तियों की अवगणना होती है। इसलिए छोटी उम्र में बालकों को जिन-जिन विषयों का ज्ञान कराया जा सकता है, उन सब विषयों का इसमें समावेश नहीं किया गया है। सामाजिक विकास के लिए अच्छी गुंजाइश है परंतु इस बात की कोई कल्पना नहीं है कि उपेक्षित व्यक्तियों का समूह कितना पंगु बन जाता है।" (बधेका, 2012)

गिजुभाई कहते हैं "किंडरगार्टन पद्धति उसके बाद में विकसित पद्धतियों के लिए सीढ़ी स्वरूप है" (बधेका, 2012, पृ. 39)।

10. उन्मेष पद्धति

यह पद्धति शिक्षण सूत्रों पर आधारित है। यह माना जाता है कि किसी वस्तु से प्रथम परिचय होने पर ही हम उसको समग्र रूप में नहीं जान पाते हैं। अपितु पहले सामान्य, फिर सूक्ष्म, फिर सूक्ष्मतर और फिर सूक्ष्मतम चीज़ों को जान पाते हैं। कारण यह कि स्वाभाविक वृत्ति ज्ञात में से अज्ञात जानने की होती है और स्थूल से सूक्ष्म में जाने की होती है।

हम जानते हैं कि एक विशेष उम्र के लोगों की राजनीति में रुचि नहीं होती। धर्म तत्व एक विशेष अवस्था के लोगों की समझ में आ ही नहीं सकते।

चित्रकला की भी समझ एक उम्र विशेष पर ही हो पाती है। उसी प्रकार बालक भी अपनी एक खास उम्र में कुछ खास बातें ही समझ पाता है। एक छोटा बालक फल को देख सकता है, सूँघ सकता है, उसे चख सकता हैं, परंतु उसे देखकर उसके मन में वनस्पति शास्त्र के विचार नहीं उठ सकते।

ज्ञान प्राप्ति की बालक में कुछ सहज वृत्तियाँ होती हैं, जैसे —

(क) ज्ञात से अज्ञात में जाना।

(ख) स्थूल से सूक्ष्म में जाना।

(ग) अपनी आयु के अनुसार जितना ज्ञान आवश्यक है उतना ही ज्ञान लेना आदि।

उन्मेष पद्धति एक ऐसी ही शिक्षा पद्धति है जिसमें बालक की सहज वृत्तियों को ध्यान में रखकर बालक को ज्ञान दिया जाता है। उन्मेष पद्धति में वस्तु की रचना होती है। यह रचना ज्ञान प्राप्त करने की बालकों की सहज वृत्ति को ध्यान में रखकर की जाती है। गिजुभाई के अनुसार उन्मेष पद्धति द्वारा रचित वस्तुओं में नीचे लिखी बातें होनी चाहिए। वस्तु पुस्तक के रूप में ही हो, पदार्थ के रूप में हो, नक्शे के रूप में हो अथवा आलेख के रूप में ही हो, जैसे—

(क) रचना में वस्तु का समग्र दर्शन होना चाहिए।

(ख) दर्शन रेखा के रूप में होना चाहिए।

(ग) दर्शन में दी गई वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि उसके आस-पास दूसरे दर्शन की बातें स्वाभाविक रूप से रची जा सके।

(घ) दूसरे दर्शन में पहले दर्शन के ब्योरों के आस-पास नए ब्योरों की रचना होनी चाहिए जो फिर तीसरे दर्शन के लिए तो पहले दर्शन के रूप में हो सकते हैं।

"इस प्रकार ज्ञात वस्तुओं के आस-पास रोज़-रोज़ अज्ञात वस्तुओं को बढ़ाते हुए आरंभ में रखी गई वस्तु के रेखाचित्र को संपूर्ण चित्र का रूप दे देना चाहिए" (बधेका, 2012, पृ. 39)।

11. कालक्रमानुसारी पद्धति

यह भी वर्तमान में प्रचलित इतिहास शिक्षा की एक पद्धति है जिससे आजकल इतिहास पढ़ाया जाता है। इस पद्धति का अर्थ है कि काल के प्रवाह के साथ इतिहास जैसा बना है उसको कालक्रम के अनुसार वैसे ही पढ़ाना। इस विधि में मुख्य कठिनाई यह है कि प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की इतिहास संबंधी कल्पना इतनी विकसित नहीं होती कि वे इतिहास की परतों की गहराई में जाकर इतिहास के पुराने प्रश्नों को अपने मन में प्रत्यक्ष कर सकें। वे रट तो लेते हैं परंतु वे घटनाएँ उनके दिल को छू नहीं पातीं। इस पद्धति को गिजुभाई उपयुक्त नहीं मानते थे। वे कहते हैं–

"वैसे इतिहास पढ़ाने की सफलता को और बालकों के हित को ध्यान में रखकर हमको इस पद्धति से इतिहास पढ़ाना छोड़ देना चाहिए" (बधेका, 2012, पृ. 42)।

12. व्युत्क्रम पद्धति

इतिहास शिक्षण की यह अन्य विधि है जो कालक्रमानुसारी पद्धति के बिलकुल विपरीत है। इसमें इतिहास को वर्तमान से आरंभ करके पीछे की ओर जाना होता है। जैसे अपना परिचय देने के बाद माता-पिता, फिर दादा-दादी और फिर पूर्वजों का परिचय। बालक की वर्तमान में जिसे वह प्रत्यक्ष देख सकता है, रुचि होती है और उसके सहारे वह सरलता

से अतीत में जा सकता है। इस विधि से इतिहास पढ़ाना उसके स्वभाव व रुचि के अनुकूल होगा। गिजुभाई इस पद्धति में इतिहास के साथ भूगोल की सहायता लेने का सुझाव देते थे जिससे बालक सरलता से सीख सके।

गिजुभाई के शब्दों में "इस पद्धति के अनुसार काम करते समय शुरू-शुरू में शिक्षक को यह काम कठिन मालूम पड़ सकता है। शिक्षक इसमें भी कहानी कहने की रीति का उपयोग कर सकता है। इससे भी आगे बढ़कर वह यात्राओं, प्रदर्शनियों, संग्रहालयों और जीती-जागती दुनिया के द्वारा बालक का ज्ञान बढ़ा सकता है। कालक्रमानुसारी पद्धति की भाँति इस पद्धति में भी शिक्षक नाट्य प्रयोग पद्धति का उपयोग अवश्य ही कर सकता है। प्रत्यक्ष वस्तु का नाटक खेलना बालकों के लिए आसान होगा। इसी के साथ भूतकाल में प्रवेश करने की दृष्टि से धीरे-धीरे विद्यार्थियों की अभिनय वृत्ति का भी विकास होता रहेगा" (बधेका, 2012, पृ. 43)।

13. पुस्तकालय पद्धति

गिजुभाई के अनुसार "पुस्तक स्वयं एक शिक्षा गुरु है और पुस्तकालय विद्यालय है" (बधेका, 2012, पृ. 43)। एक अच्छा पुस्तकालय कई शिक्षकों की ज़रूरत पूरी करता है। शिक्षक की तरह पुस्तकालय विद्यार्थियों को न तो धमकाता है, न उनसे अनुशासन का पालन करवाता है। न कक्षा में चढ़ाता है और न उतारता है, न मिथ्या स्पर्धा में प्रवेश कराता है और न ही परीक्षा का भय ही उत्पन्न करता है। फिर भी वह पल-पल में अपने पास आने वालों को प्रेमपूर्वक और शांतिपूर्वक पढ़ाता रहता है।

गिजुभाई पुस्तकालय की उपयोगिता के विषय में कहते हैं – "व्यवस्था, शांति, सभ्यता और विनय की शिक्षा देते रहने का प्रबंध भी पुस्तकालय कर सकेगा। पुस्तकों को कैसे उपयोग में लाना है, उनको किस तरह से पढ़ना है, पास में बैठकर पढ़ने वाले से कैसा व्यवहार करना है, कैसे आना है, कैसे जाना है, बातचीत किस तरह करनी है आदि बातों को सीखने में ही काफ़ी पढ़ाई हो जाती है। इस तरह पुस्तकालय की भी अपनी एक शिक्षा पद्धति है" (बधेका, 2012, पृ. 44)।

14. मुखपाठ पद्धति

जिस पद्धति में गुरु विद्यार्थी को मुँह से बोलकर शिक्षा देते हैं और जिसमें पाठ लेने के बाद विद्यार्थी उसको पोथी अथवा पुस्तक में देख-देख कर ज़ुबानी याद कर लेते हैं, उसे मुखपाठ पद्धति कहते हैं। प्राचीन काल में पुराण पढ़ने वाले (और आज भी शास्त्री) इसी पद्धति से पढ़ाते थे। मुख से दिए जाने वाले पाठों के चिन्ह और कंडिकाएँ हाथों और सिर के हलन-चलन से सूचित होती थीं।

कई वस्तुएँ ऐसी हैं जो जीवन में कंठाग्र होनी ही चाहिए। कविता, पहाड़े आदि इस पद्धति के दो अन्य उदाहरण हैं। ज्ञान हाज़िर हथियार की तरह होता है उसे तो कंठस्थ होना ही चाहिए। गिजुभाई के अनुसार "चतुर शिक्षक को चाहिए कि वह शिक्षा के क्षेत्र में मुखपाठ को स्थान दें" (बधेका, 2012, पृ. 48)।

15. वेण पद्धति

यह लोक शिक्षा की पद्धति है जिसे गिजुभाई ने शिक्षा पद्धतियों में स्थान दिया है। यह मुखपाठ पद्धति का ही एक अन्य रूप है। गाँव की निरक्षर महिलाएँ किसी

ज्ञानवती वृद्धा से रामकथा या अन्य कथाओं को सुनकर और बोलकर सीखा करती थीं। हमारा पुराने से पुराना और कीमती से कीमती साहित्य एक मुँह से दूसरे मुँह तक पहुँचता रहता है। हमारा देश आज भी अपने जीवन की संस्कारिता के बहुत से अंशों को अपने बीच सहेजे हुए है। साहित्य और कला के क्षेत्र में आज भी उसकी दृष्टि निर्मल है जिसका एक कारण यह वेण पद्धति ही है। गिजुभाई इस पद्धति का शिक्षा में बहुत योगदान मानते थे। इस पद्धति के विषय में उनके विचार थे कि "आज की पाठ्यपुस्तकों वाली पद्धति मनुष्य की स्मृति के विकास को कोई स्थान नहीं देती। वह 'ग्रंथ गाँठ में और विद्यापाठ में' के सिद्धांत को भंग करती है। हम देख रहे हैं कि आज का ज्ञान स्थायी ज्ञान नहीं टिकता। वह परीक्षा तक ही होता है। उसका स्वरूप ज़रूरत के समय काम देने का नहीं होता बल्कि ऐन मौके पर वह बेकार साबित होता है। बैन पद्धति का दूसरा लाभ यह है कि उसके कारण निरर्थक विपुल पढ़ाई बढ़ती नहीं जो उत्तम है और ग्रहण करने लायक है उसी का संग्रह बना रहता है और बैन पद्धति के द्वारा समाज को उत्तरोत्तर ज्ञान मिलता रहता है" (बधेका, 2012, पृ. 49)।

16. श्रवण पद्धति

जो विषय सुनने की मर्यादा में आ सकते हैं और जिनमें तर्क की प्रधानता नहीं होती उन्हें इस विधि से सिखाया जा सकता है। बालक मातृभाषा इसी प्रकार सीखता है। इसलिए कान के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की स्वाभाविक रीति का उपयोग एक पद्धति के रूप में किया जा सकता है। संगीत ऐसा ही विषय है। सुनते रहने से ही संगीत रसिकता, साहित्य रसिकता, संगीत सृजन आदि की शक्ति विकसित होती है। बार-बार सुना कर जिससे सिखाया जा सकता है वह पद्धति श्रवण पद्धति होती है। परंतु बार-बार रोकने-टोकने को श्रवण पद्धति नहीं कहा जा सकता है। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि श्रवण पद्धति का परिणाम तुरंत प्रकट नहीं होता। गिजुभाई के शब्दों में "उसकी फ़सल लंबे समय के बाद पकती है। इसमें शिक्षक को विषय प्रस्तुत करने के लिए अच्छी तैयारी के साथ वातावरण की निश्चितता और स्थिरता की व्यवस्था करनी पड़ती है। जिस किसी भी चीज़ को सुनाकर सिद्ध करना हो, उसको उसी ढंग से और लगभग वैसे ही वातावरण में सुनाते रहना चाहिए" (बधेका, 2012, पृ. 50)।

17. कहानी पद्धति

गिजुभाई कहानी कथन को सीखने का एक रोचक माध्यम मानते थे। कथा या कहानी पद्धति को वे इतना अच्छा मानते थे कि उन्होंने इस पर एक पुस्तक में ही रचना अनुभवों को सँजोया है। कथा कथन को शास्त्र और पद्धति बनाने के लिए उन्होंने उद्देश्य, कथा चयन, कहने के समय प्राविधि आदि सभी बातों को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार "जब तक कहानी कहने वाले के मन में कहानी कहने का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होगा तब तक वह कहानी के चुनाव, उसकी कथावस्तु की क्रमबद्धता कहने की दृष्टि को लेकर अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ अनुभव करेगा" (बधेका, 2012, पृ. 51)।

हर कहानी कहने योग्य नहीं होती और फिर सबसे महत्वपूर्ण होता है कहानी कहने का ढंग। वस्तुतः कहानी कहने की शैली पर ही कहानी कहने की सफलता निर्भर करती है। साथ ही कहानी कहने का समय भी उपयुक्त होना चाहिए। कहानी के माध्यम

से मिली शिक्षा भुलाए नहीं भूलती है। पुराने समय में लोग जीवन और धर्म की शिक्षा कहानियों के माध्यम से ही देते थे। इसलिए गिजुभाई कहते थे — "कथा या कहानी की पद्धति से पढ़ाने की रीति को फिर अधिक सजीव बनाने की आवश्यकता है। क्योंकि वह सस्ती और सरल है" (बधेका, 2012, पृ. 52)। कथा पद्धति में कहानी को बालकों से पुनः कहलवाना वे अनुचित मानते थे।

18. चलचित्र पद्धति

गिजुभाई के समय में चलचित्र अस्तित्व में आ चुका था। गिजुभाई ने उसके महत्व को पहचाना और उसे एक पद्धति के रूप में स्वीकार किया। वे मानते थे कि चलचित्र के माध्यम से उन चीज़ों के दर्शन करना संभव है जिन्हें व्यक्ति अपने वास्तविक जीवन में नहीं देख सकता। यह अच्छी चीज़ों की शिक्षा देता है यद्यपि लोग इससे बुरी प्रकार की बातें भी सीख लेते हैं। भूगोल और इतिहास जैसे विषयों की पढ़ाई के लिए तो चलचित्र सर्वोत्तम है। परंतु साथ ही गिजुभाई सावधान भी करते हैं और कहते हैं कि बालकों को अपने साथ उन्हें चलचित्र दिखाने के लिए ले जाएँ क्योंकि बालक निरर्थक प्रहसन वाली फ़िल्में देखना पसंद तो करते हैं परंतु वे विकृत मानसिकता वाली होती हैं। अतः बालक उन्हें न देखें तो अच्छा। चलचित्र पद्धति के विषय में गिजुभाई कहते हैं कि "पुस्तकों में छपी रूखी-सूखी जानकारी अथवा समझ में न आने लायक जानकारियों को हम चलचित्रों द्वारा बहुत अच्छी तरह बालकों के सामने रख सकेंगे और उनको समझा सकेंगे" (बधेका, 2012, पृ. 56)।

19. उस्ताद पद्धति

"तृषावन्त जो होएगा, पीएगा झख मार" उस्ताद पद्धति के विषय में गिजुभाई का यही मत था। यह पद्धति बड़ी अटपटी पद्धति है। यह अपनी साधना की सर्वोच्चता को प्राप्त गुरुओं की पद्धति कही जा सकती है। गिजुभाई के ही शब्दों में "गुरु तो अपनी मस्ती में मस्त रहता है। उसने कोई विद्यालय खोला नहीं है। उसके पास कोई पाठ्यक्रम, उपकरण या पद्धति भी नहीं है। यह विद्यार्थी की खोज भी नहीं करता" (बधेका, 2012, पृ. 54)।

ज्ञान पिपासु शिष्य गुरु के चरणों में आकर बैठ जाता है। वह गुरु से ज्ञान की माँग नहीं करता बस अनन्य श्रद्धा भाव से सेवा करता रहता है। और योग्य गुरु जानबूझ कर उसे विचित्र और अटपटे कार्य सौंपते रहते हैं और खुद को जानबूझ कर 'उल्लू सा' दिखाते हैं परंतु ज्ञानार्थी अविचल श्रद्धा से सेवा करता रहता है। वही विद्यार्थी अंत में अपने गुरु की प्रतिभा का दर्शन करता है और दर्शन के साथ स्वयं भी प्रकाशित हो उठता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि गिजुभाई जिस व्यावहारिक व स्वाभाविक शिक्षण विधियों की वकालत करते हैं वह उनके सृजनात्मक अंतर्मन की अमूल्य धरोहर हैं। गिजुभाई का विचार है कि यदि बच्चे हँसते-खेलते कूदते रहते हैं तो वे थकान नहीं महसूस करते हैं। इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए गिजुभाई ने अपना समूचा जीवन 'त्रिमूर्ति भवन' में लगा दिया। गिजुभाई की शिक्षण विधियों का प्रभाव राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005

पर भी पड़ा है। गौर से देखने पर पता चलता है कि एन.सी.एफ़.—2005 गिजुभाई की शिक्षण विधि का पूर्ण समर्थन करता है। अगर आज के हमारे प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक गिजुभाई द्वारा बतायी गयी शिक्षण विधियों का प्रयोग अपने अध्यापन में करते हैं तो प्राथमिक शिक्षा में आमूल परिवर्तन हो सकता है, और यही इस महान शिक्षा मनीषी के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

ग्रंथ सूची

एन.सी.ई.आर.टी. 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005.* एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

चारू. 2009. *गिजुभाई के शिक्षा दर्शन की आधुनिक शिक्षा में सार्थकता* (अप्रकाशित शोध प्रबंध). शिक्षा विभाग, जे. वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर.

बधेका, गिजुभाई. 2012. 'कठिन है माता-पिता बनना' (अनु. रामनरेश सोनी). *गिजुभाई रत्नावली भाग — दो.* सर्जना प्रकाशन, बीकानेर.

——. 2010. 'दिवास्वप्न' (अनु. रामनरेश सोनी). *गिजुभाई रत्नावली भाग—एक.* सर्जना प्रकाशन, बीकानेर.

बलहारा, अजय. 2007. *गिजुभाई बधेका का शैक्षिक चिंतन एवं आधुनिक भारतीय बाल-शिक्षा परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता* (अप्रकाशित शोध प्रबंध). शिक्षा संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी.

यादव, अवधेश. 2009. *भारतीय संदर्भ में गिजुभाई के शैक्षिक विचार* (अप्रकाशित लघु शोध). शिक्षा संकाय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर.

श्रीवास्तव, रश्मि. 2009. 'गिजुभाई बधेका का बच्चों के प्रति न्याय'. *परिप्रेक्ष्य*. 16 (3). पृ. 119–140.